सांस्कृतिक वैभव संजोये राजस्थान प्रदेश की किशनगढ़ शैली

11

डॉ0 रीता सिंह*

मनुष्य के सौदर्न्य बोध का मूलाधार संस्कषति और सभ्यता ही है इस कथन के विषय में इतना तो सार्थक है कि कलाओं की अभिव्यक्ति कही न कही से मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन से जुड़ी है और उसकी आत्मा की पोषक है। इसी कारण को आध्यात्मिक तर्षप्ति इन्ही कलाओं से मिलती है।

राजस्थान का नाम स्वयं एक सांस्कषतिक एकता का सूचक है, जो युगों से भारतीय परम्परा से जुड़ा रहा है। राजस्थान में प्राचीन प्राचीनतम संस्कषति के पुरासाक्ष्य उपलब्ध हुए है, जिनके माध्यम से इस भू–क्षेत्र के सांस्कषतिक महत्व को आँका जा सकता है। यहाँ पहाडों की कन्दराओं और महत्वपूर्ण नदियों के किनारे प्रस्तरकालीन संस्कषति के उपकरण बहुलता से उपलब्ध हुए है। ईसा के तीन हजार वर्ष की ताम्रयुगीन संस्कृति का राजस्थान केन्द्र बिन्दु रहा है। सरस्वती नदी के किनारे ऋग्वेद की रचना एवं सरस्वती घाटी सभ्यता का प्रसार राजस्थान की ही देन है। कुषाणकाल एवं मध्यकाल में मूर्तिकला एवं मंदिरों के निर्माण की कला ने जो प्रसार पाया है, वह अब अनभिज्ञ नहीं रहा है। उत्तर–मध्यकाल में पटचित्रों एवं ताडपत्रों और अन्य पोथी–चित्रों की परम्परा अक्षुण्ण रही है।[1]

भौगोलिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से राजस्थान एक महत्वपूर्ण राज्य है। राजस्थान पर्यटको के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा है।[2] पर्यटन ज्ञानार्जन और शोधात्मक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यदि पर्यटक की दृष्टि शोधात्मक और गूठ है तो वह कुछ न कुछ खोज ही लेता है। ''ऐसी ही दृष्टि ऐरिक डिकिन्सन की थी। जो लाहौर के गवर्नमेन्ट कालेज में अंग्रेजी साहित्य के व्याख्याता रहे और भारतीय संस्कृति के महान प्रशंसक होने के साथ–साथ यहाँ का रहन–सहन, ढीली–ढाली पोशाक को भी पहनने का आनन्द उठाया एवं भारतीय हिन्दी कविता को भी बहुत सराहा। वे सन् 1943 में जब मेयो कॉलेज, अजमेर में शैक्षणिक भ्रमण के लिए आये तो उन्होने किशनगढ राजघराने के चित्रकला के खजाने को देखा, जिनमें राजाओं की पेन्टिंग, व्यक्तिचित्र और सामान्य चित्र देखकर तो उनसे वे सम्मोहित हो गये।''[3] अगले ही वर्ष वे विधिवत् वहां की चित्रकला का अध्ययन करने के लिए आये और किशनगढ के चित्रो को देखकर अचंभित रह गये। विषय– वस्तु शारीरिक बनावट, रंग–संयोजन आदि की दृष्टि से ये चित्र अन्य शैलियों से विशिष्ट एवं अलग पाये गये। उन्हीं के प्रयत्नों से राष्ट्रीय संग्रहालय में कुछ चयनित चित्रों की प्रदर्शनी लगाई गई और तभी से किशनगढ की चित्रकला की देश–विदेशों में ख्याति फैल गई और[4] दार्शनिक एवं कला प्रेमी इस सांस्कृतिक वैभव संजोये राजस्थान प्रदेश की किशनगढ शैली के आकर्षण से प्रभावित होने लगे।

''देश के परिदृश्य में राजस्थान का सांस्कृतिक वैभव बेजोड़ है। त्यागमयी ललनाओं, साहसी वीरों और गारिमामयी संस्कृति के इस प्रदेश का भौगोलिक, ऐतिहासिक और प्राकृतिक

*(यू0जी0सी0), पी0डी0डब्लू0एफ0, ललित कला विभाग, मेरठ कॉलिज, मेरठ

वैविध्य अनोखा है।[5] इसी अनोखेपन में ही आध्यात्मिकता विचरण करती है। ''इस परिवेश में संवेदना के स्तर पर कला, संगति, नृत्य, नाटक या अन्य किसी सांस्कृतिक समृद्धि के मुलायम धागो का ताना–बाना बुनना क्या मुमकिन है ? इस प्रश्न का उत्तर बहुत सहज है, क्योंकि राजस्थान की कला और संस्कृति का एक लम्बा इतिहास इसका साक्षी है– विविधता और उत्कृष्ट सांस्कृतिक परम्परा की कडियां। राजस्थान की माटी में गंध है, इसकी मिट्टी में मस्ती और हवा में संगीत है। यहाँ के बालू के टीलो पर मिटती – उभरती रेखायें, यहां का साफ आकाश–उस पर बदलते रंग – इस बात की ओर संकेत करते है कि यहां कला, शिल्प, गीत, संगीत, नृत्य आदि विविध सांस्कर्षतिक एवं साहित्यिक विधाओं के लिए अनुकूल वातावरण, रूचि एवं सरसता सदैव मौजूद रही है यहां का एक समृद्ध परम्परागत सांस्कृतिक वैभव है।[6] जो दर्शको को सदैव से आकर्षित करता रहा है। दर्शक लघुचित्रो के ताने–बाने से बँधकर सीधे राजस्थान आ जाता है। क्योंकि यहां कला के क्षेत्र में काफी कुछ सृजित किया जा चुका है। जो आज भी गतिमय और आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बना हुआ है और आज भी राजस्थान के चटकरंग सामान्य जन को लुभाते है।

1609 ई0 में राजा किशन सिंह ने अपने नाम से सोढोलाव गांव का नाम बदलकर किशनगढ़ की स्थापना की थी। किशनगढ जो पहले एक सोढोलाव गांव ही रहा, समय पश्चात जिसे महाराजा कृष्णासिंह ने अपनी धार्मिक, साहित्यिक और चित्रात्मक दृष्टि से विकसित कर उसका रूप जरूर बदला, किन्तु लोक जीवन की सहज धार्मिक भावना, प्रकृति की फैली चारों तरफ सुन्दर छटा और जोगीतालाब की पारदार्शिता नही बदली। किशनगढ शैली को प्रकाश में लाने का श्रेय ''विद्वान एरिक डिकिन्सन और कार्ल खंडालावाल को जाता है।[7] इससे यह स्पष्ट है कि एक विदेशी शिक्षक अपनी शैक्षिक यात्रा के दौरान ही एक अनमोल खजाने को खोजता है और उसकी अद्भुत कलात्मकता को देश–विदेश में विस्तारित करता है। किशनगढ के अधिकांश राजा कवि, साहित्यकार, कलाकार और कला प्रेमी हुए। जिससे यहां की कला में राधा–कृष्ण की लीलाओं का अद्भुत और दिव्यभाव उभर कर आया है और इसी कारण ये चित्र विश्व फलक पर हर किसी को अपनी ओर आकर्षित करते है। ये लघु चित्र अपने अंदर सागर की असीम गहराई को समेटे हुए हैं। धार्मिक भावना से ओत–प्रोत राजा राज सिंह के पुत्र राजा सांवत सिंह थे जिन्हे उपनाम नागरीदास जी के नाम से जाना गया। काव्य, चित्रकला और संगीत तीनो ललित कलाओं के कलात्मक वैभव से किशनगढ शैली को विकसित करने में महाराजा नागरीदास का काव्य और निहालचन्द्र की चित्रकला का योगदान सर्वविदित है।

विरासत में मिली भक्ति योग की साधना ने अपना रूप दिखाया। ''नागरीदास के कलात्मक व्यक्तित्व ने किशनगढ शैली को एक नवीन मोड दिया। उनमें रूप–सौन्दर्य के प्रति अपूर्व जिज्ञासा के साथ ही साथ भावुक हृदय की भक्ति भावना भी थी। नागरीदास राजा होते हुए भी राज्य लिप्सा से बहुत दूर रहे। भोगी होते हुए भी योगी की भाँति जीवन व्यतीत किया। किशनगढ शैली में प्राण फूँकने वाले नागरीदास महारसिक, भावुक कवि, कला मर्मज्ञ तथा राधा–माधव के युगल रूप के भक्त थे।[8]

''नागरीदास ने प्रियसी के रूप में आराधना की इनके कविवर का आत्म विवेचन एक स्वस्थ काव्यधारा के रूप में प्रस्फुटित हुआ। यही भक्ति की सात्विक भावना किशनगढ के चित्रों में स्पष्ट हुई है। जिससे राधा–कष्ष्ण के चित्र सौन्दर्यानुभूति की सहज अभिव्यक्ति प्रतीत होते है जबकि राजस्थानी शैली में लगभग सभी ने राधा–माधव के चित्र बनाये है किन्तु अधिक आकर्षण का केन्द किशनगढ के चित्र ही बन पडे है।

इस शैली के चित्रों में एक अनूठा जादू भरने तथा ''बणीठणी'' के सौन्दर्य को आधार बनाकर राधा–कृष्ण के पुनीत माधुर्य भाव को जीवन्त रूप प्रदान करने में मोरध्वज निहालचन्द का नाम स्मरणीय है। यह इनकी ही अद्वितीय चित्रांकन प्रतिभा का परिणाम था कि किशनगढ शैली में जादुई प्रभाव की सृष्टि सम्भव हो सकी।[9] ''बणीठणी'' के विषय में कहा जाता है कि राज दरबार में इनका एक संगीतज्ञ, कवयित्री के रूप में सम्मान था क्योंकि वे स्वयं इनमें प्रवीण थी, जिसका सर्वत्र प्रभाव आज भी स्पष्ट है। नागरीदास जी ने प्रियसी के रूप में इनकी आराधना की इनके प्रति कविवर आत्म निवेदन एक स्वस्थ काव्य धारा के रूप में प्रस्फुटित हुआ जिसने चित्रकारों को विषय वस्तु की काव्यमय पृष्ठभूमि तथा कल्पना एवं सौन्दर्य का विशाल[10] फलक दिया।

कुमार स्वामी ने कहा है कि– '' भारतीय जीवन दर्शन का अन्तिम छोर सहज है और वही सहज, मध्य युगीन भक्ति साहित्य में बहुत ही विशिष्ट रूप में अंकित हुआ है वही सहज, मध्य–युगीन संगीत और चित्रकला में अंकित हुआ है।'' ''यही सहजता किशनगढ के चित्रों में स्पष्ट दिखाई देती है। यह रूप आराधना द्वारा आराधक को पाने की वह चरम परिणति है जिस कारण किशनगढ के चित्र विश्व पटल पर अलग प्रतीत होते है।

किशनगढ चित्रशैली के लिए यह कहा जा सकता है कि ''किसी देश की संस्कषति उसकी सम्पूर्ण मानासिक निधि को सूचित करती है। यह किसी विशेष व्यक्ति के पुरूषार्थ का फल नहीं अपितु असंख्य ज्ञात तथा अज्ञात व्यक्तियों के भगीरथ प्रयत्न का परिणाम होती है। सब व्यक्ति अपनी सामर्थ्य और योग्यता के अनुसार संस्कृति के निर्माण में सहयोग देते हैं। संस्कृति की तुलना आस्ट्रेलिया के निकट समुद्र में पाई जाने वाली मूँगे की भमिकाय चट्टानों से की जा सकती है। मूँगे के असंख्य कीडे अपने छोटे घर बनाकर समाप्त हो गए, फिर नये कीडो ने घर बनाए, उनका भी अन्त हो गया। इसके बाद उनकी अगली पीढी ने भी यही किया और यह क्रम हजारों वर्ष तक निरन्तर चलता रहा। आज उन सब मूगों के नन्हे–नन्हे घरो ने परस्पर जुडते हुए विशाल चट्टानो का रूप धारण कर लिया है। संस्कषति का भी इसी प्रकार धीरे–धीरे निर्माण होता है।[11] किशनगढ शैली का भी इसी प्रकार धीरे–धीरे निर्माण हुआ। इसके एक पीढी से दूसरी पीढी के धार्मिक और कलात्मक संस्कार उसी तरह जुड कर चट्टान बने जिस तरह मूँगो के नन्हे–नन्हे घरों से जुड़कर चट्टान का रूप धारण किया। यही कलात्मक धार्मिकता किशनगढ की चित्रकला, इतिहास, धर्म, शासन सभी को अपनी अलौकिक सौन्दर्य दृष्टि से निहारती हुई उच्च स्तर तक पहुँची। इन ऊँचाई तक पहुँचने का कार्य महाराजा नागरीदास जी की कलम और निहालचन्द जी की लूलिका ने किया। सार रूप में यह कहा जा सकता है कि अपनी रसमयी मनोहारी रंग–योजना, आकर्षक एवं गतिमान रेखा–सौन्दर्य तथा

लावण्यमय संयोजन वैशिष्ट्य के कारण किशनगढ शैली के चित्र न केवल भारत में वरन विश्वभर में प्रसिद्ध है। काव्य और कला का जो संगम हम किशनगढ शैली में पाते हैं वह अद्वितीय है।[12]

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ0 जयसिंह नीरज – राजस्थानी चित्रकला, 2009, पेज नं0– 9, 10

2. डॉ0 भंवर लालगर्ग एवं डॉ0 आनन्द प्रकाश भारद्वाज – ''राजस्थान भौगोलिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन'' – प्रथम संस्करण 2000

3. एम0 ए0 रन्धावा एवं डी0 ए0 रूधावा – ''किशनगढ पेंटिग'', 1980

4. कृष्णा चेतैन्य पेंटिग – ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिय पेंटिग, 1982, पृष्ठ सं0 – 118

5. डा0 जयसिंह नीरज एवं डा0 बी0एल0 शर्मा – राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा जयपुर, 1989

6. सुमहेन्द्र– राजस्थान का समसामयिक कला जगत, पृष्ठ – 65

7. डा0 फैय्याज अली खां, भक्त नागरीदास – किशनगढ पेटिंग (अप्रकाशित शोध ग्रंथ)

8. डा0 श्याम बिहारी अग्रवाल – भारतीय चित्रकला और काव्य, इलाहाबाद, 1996 पृष्ठ सं0 – 18

9. प्रेमचन्द्र गोस्वामी – राजस्थान की लघुचित्र शैलियाँ पृष्ठ सं0– 32

10. प्रेमचन्द्र गोस्वामी – राजस्थान की लघुचित्र शैलियाँ पृष्ठ सं0– 32 1 1 .

हरिदत्त वेदालंकार – भारत का सांस्कषतिक इतिहास पृष्ठ 2, 3

12. प्रेमचन्द्र गोस्वामी – राजस्थान की लघुचित्र शैली पृष्ठ सं0 – 34